श्री बहाउल्ला के रहस्य शब्दों

का

हिन्दी भाषा में अनुवाद

अनुवादक—
नत्थासिंह शर्मा

प्रकाशक—
बहाई पब्लिशिंग कमिटी,
पो. बो. नं. १९, नई दिल्ली ।

॥ प्रथम आवृत्ति ॥
सन् १९५०

मुद्रक—
रश्मि आर्ट प्रेस,
दरियागंज–दिल्ली ।

श्री बहाउल्लाह के रहस्य शब्द

प्रथम विभाग

(अरबी से)

वह प्रकाशों का प्रकाश है।

यह वृत्तान्त प्रतिष्ठित ईश्वरीय दरबार की प्रेरणा, शक्तिशाली और अधिकारी भाषा के द्वारा भूतकालिक अवतारों पर प्रगट हुआ था।

हमने सत्यवादियों पर दया करके इसका वास्तविक तत्त्व निकाला। और उसको सूक्ष्म रूप में धारण किया। जिससे कि यह मनुष्य ईश्वर के सन्मुख किये हुए प्रण को पूर्ण करें। और उस प्रतिज्ञा से उऋण हों जो कि आत्मिक धरोहर के समान उनको आत्माओं द्वारा सौंपी गई थीं। और वह आत्मिक संसार में शुद्ध आचरण के तत्त्व के द्वारा सफल हो जायँ।

(१) हे आत्मा के पुत्र !

मेरा प्रथम उपदेश यह है कि तू यथार्थ दयालु और प्रकाशित हृदय को उत्पन्न कर। जिससे कि तू ऐसा राज्य प्राप्त करे जो कि (भूत, भविष्यत, वर्तमान) त्रिकाल में अमिट, प्राचीन, और सदैव नित रहने वाला हो।

(२) हे आत्मा के पुत्र !

न्याय मुझे सब वस्तुओं से अधिक प्रिय है। यदि तू मुझे

चाहता है तो तू उससे विमुख और अचेत न हो। ताकि मैं तुझे अपना विश्वास-पात्र बनाऊँ।

इसकी सहायता से तू दूसरों की दृष्टि से नहीं बल्कि अपनी ही दृष्टि से देखेगा। और दूसरों के ज्ञान से नहीं बल्कि अपने ही ज्ञान से पहचानेगा।

विचार कर कि तुझे कैसा होना चाहिये।

न्याय तेरे लिये मेरा दान और दया है। (सदैव) इसको सन्मुख रख।

(३) हे मनुष्य पुत्र!

मैं अपनी अजरता और अमरता में तुझसे प्रेम की भावना जानता था। अतः इसी कारण मैंने तुझे उत्पन्न किया और अपना प्रतिबिम्ब डाला। और तुझे अपना स्वरूप दिखाया।

(४) हे मनुष्य पुत्र!

तेरा उत्पन्न होना मुझे प्रिय था। इसलिये तुझे मैंने उत्पन्न किया। तू मुझसे प्रेम कर जिससे मैं तेरा नाम तेरी आत्मा को जीवन तत्व से भर दूँ।

(५) हे अस्तित्व के पुत्र!

तू मुझसे प्रेम कर कि मैं तुझसे प्रेम करूँ। यदि तू मुझसे प्रेम न करेगा तो तू मेरे प्रेम को कदापि नहीं प्राप्त कर सकेगा।

हे मेरे सेवक तू इसे स्मरण में रख।

(६) हे अस्तित्व के पुत्र !

मेरा प्रेम तेरी वाटिका है, और मेरा मिलाप तेरा स्वर्ग है इसमें प्रवेश कर। और विलम्ब न कर। यह बात तेरे लिये हमारे सर्वोच्च राज्य और प्रकाशवान् दरबारमें नियुक्त की गई है।

(७) हे मनुष्य पुत्र !

यदि तू मुझे चाहता है तो तू अहम् को त्याग दे। और यदि तू मेरी प्रसन्नता चाहता है तो अपनी इच्छाओं से अपने नेत्र मूँद ले। जिससे कि तू मुझमें लीन हो जाये और मैं तुझमें सदैव विराजमान रहूँ।

(८) हे आत्मिक पुत्र !

तू इन्द्रिय दमनके बिना और मेरी ओर ध्यान देने के सिवाय शान्ति नहीं पा सकता।

क्योंकि होना यह चाहिये तेरा गौरव अपने नाम से नहीं बल्कि मेरे नाम से हो। और तेरा भरोसा स्वयम् तुझ पर नहीं बल्कि मुझ पर हो। क्योंकि मैं यह पसन्द करता हूँ कि केवल मैं ही सब वस्तुओं से प्रिय हो जाऊँ।

(९) हे आस्तित्व के पुत्र !

मेरा प्रेम मेरा सुरक्षित गढ़ है। जो इसमें प्रवेश करता है वह सुरक्षित रहता है। और मुक्ति पाता है। और जो उसके विमुख होता है वह भटक कर नष्ट हो जाता है।

(१०) ऐ शब्द पुत्र !

तू मेरा गढ़ है; उसमें प्रवेश कर ताकि सुरक्षित रहे। मेरा प्रेम तुझमें है इसे पहिचान ले और ज्ञान प्राप्त कर ले। जिससे कि तू मुझे अपने समीप पाये।

(११) हे वर्तमान पुत्र !

तू मेरा दीपक है और मेरा दिया तुझमें प्रकाशित है इससे प्रकाश प्राप्त कर। और मेरे अतिरिक्त किसी से कुछ न मांग। क्योंकि मैंने तुझे स्वाविलम्बी उत्पन्न किया और मैंने दैनिक प्रशाद पूर्ण रूप से तुझको प्रदान किया है।

(१२) हे वर्तमान पुत्र !

मैंने शक्तिशाली करों से तेरा निर्माण किया है। और पूर्ण अधिकार की उंगलियों से तुझे उत्पन्न किया है। और अपना प्रकाश तत्व तुझमें सौंपा है। इसके द्वारा प्रत्येक वस्तु से वंचित होकर स्वावलम्बी हो जा। क्योंकि मेरा कौशल सब प्रकार पूर्ण है और मेरी आज्ञा अटल है इसमें सन्देह न कर और इससे अविश्वासी न हो।

(१३) ऐ आत्मा के पुत्र !

मैंने तुझे सम्पूर्ण रूप से स्वावलम्बी उत्पन्न किया है। तो तू अवलम्बी क्यों बनता है।

मैंने तुझे प्रतिष्ठित बनाया है, अपमानित क्यों होता है। और मैंने तुझे अपने ज्ञानतत्त्व से उत्पन्न किया है। मेरे

अतिरिक्त दूसरों से ज्ञान क्यों मांगता है।

और अपनी प्रेम मृतिका से मैंने तुझे गूँधा है। पराये से क्यों रूष्ट है।

अपने अन्दर देख और फिर देख तू अपने में मुझे नियुक्त और सर्वशक्तिवान और शक्तिशाली और त्रिकालिक पायेगा।

(१४) ऐ मनुष्य पुत्र !

तू मेरा राज्य है और मेरा राज्य नष्ट नहीं होता। फिर तुझे नष्टता का भय क्यों है।

तू मेरा प्रकाश है, और मेरा प्रकाश कभी नहीं बुझता। फिर तुझे अपने बुझने का डर क्यों है।

तू मेरा गौरव है, और मेरा गौरव कभी नहीं ओझल होता। तू मेरा वस्त्र है। मेरा वस्त्र कभी पुराना नहीं होता।

तू मेरे प्रेम में शान्तिपूर्वक स्थापित रह। ताकि तू परम संसार में मुझे पा सके।

५) ऐ शब्द पुत्र !

मेरे अतिरिक्त तू सब से विमुख हो। और मेरी ओर ध्यान कर। क्योंकि मेरा अधिकार सर्वदा रहने वाला है जो कभी नष्ट न होगा। और मेरा राज्य त्रिकालिक है—जिसमें कभी परिवर्तन न होगा।

यदि तू मेरे से अलग और किसी का इच्छुक है तो तू कभी सफल न होगा। चाहे सदैव सर्वदा खोजता रहे।

(१६) ऐ प्रकाश पुत्र !

मुझसे अलग सब को भूल जा और मेरी आत्मा से सहानुभूति रख । यह मेरे निर्देश का सारांश है । इसकी ओर ध्यान दे ।

(१७) हे मनुष्य पुत्र !

मुझसे अलग सब से पृथक होकर मुझे अपने लिये पर्याप्त समझ ।

और मेरे अतिरिक्त किसी सहायक का इच्छुक न हो । क्योंकि मुझसे अलग कोई भी कदापि भी तुझे पर्याप्त न होगा ।

(१८) ऐ आत्मा के पुत्र !

जो बात अपने लिये अनइच्छुक है मुझसे वह न मांग । जो कुछ हमने तेरे लिये भाग्य में अङ्कित कर दिया है उसी पर प्रसन्न रह ।

तेरे लिये यही लाभदायक है यदि तू इससे प्रसन्न हो ।

(१९) हे दिव्यलोक के पुत्र !

मैने तेरे अन्दर अपनी एक आत्मिकता फूँक दी है । जिससे कि तू मुझसे प्रेम करे ।

तूने मुझे क्यों त्याग दिया और मुझसे अलग और प्रेमी की इच्छा क्यों की ।

(२०) ए आत्मा के पुत्र !

मेरा अधिकार तुझ पर विस्तृत है भुलाया नहीं जा सकता ।

मेरी करुणा तुझ पर अमित है छुपाई नहीं जा सकती।

मेरा प्रेम तुझ में वर्त्तमान है उसको ढांका नहीं जा सकता।

मेरा प्रकाश तेरे लिये प्रगट है। ओझल नहींकिया जा सकता।

(२१) हे मनुष्य पुत्र !

मैंने तेरे लिये सर्वोच्च नवीन ईश्वरीय वृक्ष से पवित्र फल नियुक्त किये हैं। फिर तू उनसे क्यों विमुख होकर लघु वस्तुओं को स्वीकार करता है। तू उसी ओर ध्यान दे जो पुण्य लोक में तेरे लिये सर्वोच्च है।

(२२) हे आत्मा के पुत्र !

मैंने तुझे उच्च पदाधिकारी बनाया है। तूने अपने आपको नीच कर लिया है। बस तू इस सर्वोच्च पद को प्राप्त क जिसके लिये तू उत्पन्न हुवा है।

) हे श्रेष्ठलोक के पुत्र !

मैं तुझे अविनाशी की ओर बुलाता हूँ परन्तु तू नाशवंत मांगने वाला है। तू हमारी इच्छा की ओर से विमुख क्यों हुवा। और अपनी इच्छा की ओर क्यों ध्यान दिया।

(२४) ऐ मनुष्य पुत्र !

अपनी सीमा से आगे न बढ़। और जो वस्तु तेरे समान नहीं है उसकी मांग न कर। अपने प्रभु के समक्ष प्रणाम कर। जो सर्वशक्तिवान और सर्वाधिकारी है।

(२५) ऐ आत्मा पुत्र !

दीन पर अपनी बड़ाई न जता, इसलिये कि मैं उसके आगे आगे चलता हूँ। और तुझको खेदजनक दशा में देखता हूँ। मैं तुझ पर नित्य सर्वदा फटकार करता रहूँगा।

(२६) ऐ वर्तमान पुत्र !

तू अपने दोष किस कारण भूल गया। और मेरे जनोंके दोष निकालने में सलग्न हुवा। जो मनुष्य ऐसा करता है उस पर मेरी फटकार होती है।

(२७) ऐ मनुष्य पुत्र !

जब तक तू अपराधी है किसी के अपराध का वर्णन न कर। यदि तूने इसके विरुद्ध किया तौ तू श्राप-पात्र है। और मैं उसका साक्षी हूँ।

(२८) हे आत्मा पुत्र !

इस बात का विश्वास कर ले कि जो मनुष्य जनता को न्याय की आज्ञा प्रदान करता है किन्तु स्वयम् कुकर्म में सलग्न रहता है। तो वह यद्यपि मेरे नाम से प्रसिद्ध हो किन्तु उसका मुझसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

(२९) ऐ वर्तमान पुत्र !

जो बात तू अपने लिये पसन्द नहीं करता वह किसी दूसरे की ओर न लगा। और जिस वस्तु पर तू स्वयम् कार्यान्वित नहीं है दूसरौं से न कह। तेरे लिये यह मेरी आज्ञा है। इस

पर कार्यान्वित हो।

(३०) ऐ मनुष्य पुत्र !

मेरे किसी जन को जब वह तुझसे कुछ मांगे वंचित न कर क्योंकि उसी की आकृति मेरी आकृति है। तू मुझसे लज्जा कर।

(३१) ऐ वर्तमान पुत्र !

इससे पहले कि तेरा निरीक्षण किया जाये। प्रतिदिन अपनी प्रवृत्तियों का निरीक्षण कर लिया कर। क्योंकि मृत्यु अकस्मात् आजायगी। और तुझे अपनी प्रवृत्तियों का निरीक्षण कराने के लिये खड़ा होना पड़ेगा।

(३२) ऐ श्रेष्ठलोक के पुत्र !

मृत्यु को मैंने तेरे लिये शुभ सूचना के समान नियुक्त किया है। तू इससे खेद क्यों करता है। और प्रकाश मैंने इस कारण प्रगट किया है कि तू प्रकाशित हो। फिर तू उससे क्यों छिपता है।

(३३) हे आत्मा पुत्र !

मैं तुझे प्रकाश की शुभ सूचना देता हूँ। तो तू प्रसन्न हो जा। मैं तुझे ईश्वरीयलोक में बुलाता हूँ। इसमें सुरक्षित हो जा। जिससे कि तू नित्य सर्वदा प्रशान्त रहे।

(३४) ऐ आत्मा पुत्र !

महान् आत्मा तुझे पुनर्मिलन की शुभ सूचना सुनाती है। फिर

किस लिये तू शोकित है । और धार्मिकात्मा ईश्वरीय धर्म पर नियुक्त रहने में तुझे सहायता देती है । फिर क्यों स्वयम् को छुपाता है । और मेरी आकृति का प्रकाश तेरे आगे आगे चलता है फिर क्यों कुमार्गी होता है ।

(३५) हे मनुष्य पुत्र !

किसी बात का खेद न कर । सिवाय के हमसे दूर रहने का । और किसी बात से प्रसन्न न हो । सिवाय हमारे समीप आने से और हमारी ओर लौटने से ।

(३६) हे मनुष्य पुत्र !

अपनी हृदय की प्रसन्नता से प्रसन्न हो । जिस से कि तू मुझसे मिलने के योग्य हो जाय । और मेरी सुन्दरता का दर्पण बनने के योग्य हो जाय ।

(३७) हे मनुष्य पुत्र !

अपने अतिरिक्त शरीर को मेरे सुन्दर वस्त्रों से वस्त्रहीन न कर । और मेरे अद्भुत और विलक्षण स्रोते से अपने आपको बंचित न कर । जिससे कि तू मेरी अनादि और अविनाशी आत्मा में कभी प्यासा न हो ।

(३८) हे अस्तित्व के पुत्र !

मेरे प्रेम के लिये मेरी आज्ञाओं पर चल । और मेरी सम्मति खोजने के लिये अपनी आत्मा को लोभ भोग से सुरक्षित रख ।

(३९) हे मनुष्य पुत्र !

यदि तुझे मेरे स्वरूप से प्रेम है तो मेरी आज्ञाओं का उलंघन न कर । और मेरी सम्मति चाहने के लिये मेरी आज्ञाओं को न भूल ।

(४०) हे मनुष्य पुत्र !

यदि तू पृथ्वी की विस्तृता और आकाश के वृत्त को भी पार कर लेगा तो भी, तुझे हमारे धर्म से हार्दिक प्रेम के बिना और हमारी आकृति के आगे नम्रता किये बिना कहीं आनन्द न मिलेगा ।

(४१) ऐ मनुष्य के पुत्र !

मेरी आज्ञा की प्रतिष्ठा कर ताकि मैं महान रहस्यों को तुझपर प्रगट करूं । और तुझ पर सर्वदा स्थित रहने वाले प्रकाशों के साथ चमकूँ ।

(४२) ऐ मनुष्य पुत्र !

तू मेरे सन्मुख नम्रता धारण कर जिससे मैं तुझ पर कृपा दृष्टि करूँ । मेरे धर्म की सहायता कर, जिससे तू संसार में सफलता प्राप्त करे और विजयी हो ।

(४३) हे वर्तमान पुत्र !

मेरी पृथ्वी पर मेरी चर्चा कर । जिससे कि मैं अपने स्वर्गमें तेरी चर्चा करूँ । जिससे कि तेरे और मेरे नेत्र ठंडे हों ।

(४४) ऐ ईश्वरीय सिंहासन के पुत्र !

तेरे श्रवण मेरे श्रवण हैं। उनसे सुन। तेरे नेत्र मेरे नेत्र हैं। उनसे अवलोक। जिससे कि अपने हृदय की गहराई में मेरी महिमा और पवित्रता की साक्षी दे । और मैं इस बात की साक्षी दूँ कि तुझको मेरे समीप महान प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई है।

(४५) ऐ वर्तमान पुत्र !

मुझसे प्रसन्न होकर और मेरे न्याय पर धन्यवाद देकर मेरे धर्म के मार्ग में बलिदान देने की हार्दिक इच्छा कर। जिससे कि तू मेरे साथ पट प्रतिष्ठा के पीछे और मान के वितानों में विश्राम करे।

(४६) ऐ मनुष्य पुत्र !

तू अपने विषय और अपने कार्य में ध्यान पूर्वक सोच वि[illegible] कर। क्या तू अपनी शय्या पर मृत्यु प्राप्त करना चाहता है। या तू मेरे धर्म मार्ग में मृतिका पर बलिदान होना चाहता है। और मेरे धर्म का सूर्योदय स्थान बनना और स्वर्गलोकमें मेरा प्रकाशमय बनना पसन्द करता है । ऐ जन ! तू न्याय कर।

(४७) ऐ मनुष्य के पुत्र !

अपने स्वरूप की सोगन्द तेरे बालों (केशों) का तेरे रक्तमें रंग जाना मेरे समीप दोनों लोकों के निर्माण करने से और दोनों

लोकों के प्रकाश से भी अधिक महान है। हे जन, उसे प्राप्त करने का यत्न कर।

(४८) ऐ मनुष्य पुत्र !

प्रत्येक वस्तु का एक चिन्ह होता है । प्रेम का चिन्ह मेरी आज्ञा पर अटल रहना और मेरी ओर से जो परीक्षा हो, उस पर धैर्य धारण करना है।

(४९) ऐ मनुष्य पुत्र !

प्रेमी संकटोंकी याचना करता है। जैसे कि विरोधी क्षमा की और अपराधी दया की।

(५०) ऐ मनुष्य पुत्र !

यदि मेरे धर्म मार्गमें तुझ पर संकट न आये। तो तू किस प्रकार उन मनुष्यों का अनुयायी हो सकता है । जो मेरी इच्छा पर प्रसन्न रहते हैं। और यदि मेरे दर्शन के चाहमें तुझे कोई कष्ट न हो तो मेरे स्वरूप के प्रेमसे तू कैसे प्रकाशित हो सकता है।

(५१) ऐ मनुष्य पुत्र !

मेरी ओर से किसी को कष्ट होना मेरी दया है। जो प्रगट में अग्नि और आपत्ति ज्ञात होती है। किन्तु वास्तव में प्रकाश और दया है। उसकी ओर शीघ्रता से दौड़। जिससे कि तू सदा सर्वदा प्रकाश और अनादि आत्मा बन जाये। यह मेरा धर्म है इसका पालन कर।

(५२) ऐ मनुष्य पुत्र !

यदि तुझको रिद्धि सिद्धि प्राप्त हो तो, प्रसन्न न हो। और यदि तेरा अपमान हो तो उससे शोकित न हो। इसलिये कि यह दोनों एक नियत समय पर नष्ट और समाप्त हो जाते हैं।

(५३) ऐ वर्तमान पुत्र !

यदि तू कंगाल हो जाये तो शोक न कर क्यों कि धन का स्वामी कुछ समय पश्चात् तुझ पर धन प्रेरित करेगा। और नीचता से भय न कर क्योंकि एक दिन तुझे मान प्राप्त होगा।

(५४) ऐ वर्तमान पुत्र !

यदि तू अनादि और त्रिकालिक धन चाहता है और नित्य सदा सर्वदा जीवन प्राप्त करना चाहता है तो नाशवान और नष्ट हो जाने वाले वैभव को त्याग दे।

(५५) ऐ वर्तमान पुत्र !

संसार से मन न लगा। क्योंकि अग्नि से हम कंचन की परीक्षा करते हैं। और कंचन से हम, जनों की परीक्षा करते हैं।

(५६) ऐ मनुष्य पुत्र !

तुझे कंचन की इच्छा है और मैं तुझको उससे दूर पवित्र रखना चाहता हूँ। तू अपनी आत्मा का धन कंचन में समझता है, किन्तु मैं तेरी धनवानी इसमें जानता हूँ कि तू

कंचन से पूर्ण पवित्र और स्वतंत्र हो जाय। अपने जीवन की सौगन्द। वह मेरा ज्ञान और यह तेरा भ्रम है। मेरी सम्मति तेरी सम्मति से किसप्रकार सहमति हो सकती है ?

(५७) ऐ मनुष्य के पुत्र !

मेरी संपति मेरे कंगाल जनो पर व्यय कर जिस से तुझको आकाश में अमर प्रतिष्ठा के कोष प्राप्त हों। और सर्व सर्वदा बड़ाई व गौरवता के कोष मिलें। परन्तु मेरे जीवन की सौगन्द। यदि तू मेरे नेत्रों से देखे तो आत्मिक बलिदान अधिकाधिक उत्तम है।

(५८) ऐ मनुष्य पुत्र !

उपस्थित शरीर मेरा सिंहासन है। उसे मेरे विराजमान होने और पदारपण के लिये प्रत्येक वस्तु से पवित्र कर दे।

) ऐ वर्तमान पुत्र !

तेरा अन्तःकरण मेरा प्रेरणा स्थान है। मेरे स्थापित होने और प्रेरणा के लिये उसे शुद्ध कर। और तेरी आत्मा मेरा दृश्य स्थान है। मेरे प्रगट और प्रकाशित होने के लिये उसे पवित्र बना।

(६०) ऐ मनुष्य पुत्र !

अपना हस्त मेरे सीने पर धर। जिससे कि मैं तुझ पर प्रकाशमान और प्रकाशित हो जाऊँ।

(६१) ऐ मनुष्य पुत्र !

मेरे आकाश की ओर चढ़ । जिससे कि तू पुनर्मिलन का आनन्द प्राप्त करे। और प्रतिष्ठा के अमर पात्र से अद्वितीय मदिरा पिये।

(६२) ऐ मनुष्य पुत्र !

अनेक समय व्यतीत हो गये। किन्तु तू सर्वदा अपने व्यर्थ भ्रम और शंसय में सलग्न रहा। तू कब तक अपनी शय्या पर पड़ा सोता रहेगा। अपनी निद्रा से जाग क्योंकि सूर्य शीश पर आ गया । कदाचित वह तेरे ऊपर अपने सुन्दर प्रकाश से प्रकाशित हो।

(६३) ऐ मनुष्य पुत्र !

तूर पर्वत के क्षितिज से तुझ पर प्रकाश डाला.
और तेरे हृदय के पवित्र पर्वत में शुद्ध आत्मा प्रवेश.
तो तू अब अपने को भ्रम और शंसय के पटों से स्वतंत्र कर। फिर मेरे दरबार में प्रवेश कर । जिससे कि तू अविनाशी जीवन और मेरे मिलाप के योग्य बने। और तुझ को शोक परिश्रम और मृत्यु न ग्रहे।

(६४) ऐ मनुष्य पुत्र !

मेरी अनादिता मेरा आविष्कार है। मैंने इसे तेरे लिये पैदा किया इसको अपने मंदिर का वस्त्र बनाले । और मेरा एक होना मेरा संशोधित आविष्कार है। मैंने तेरे लिये इसे

बनाया। बस इसको कुरता बनाले। जिससे कि तू सदा सर्वदा मेरी त्रिकालिक उपस्थिति का दर्शस्थान रहे।

(६५) ऐ मनुष्य पुत्र!

मेरा ऐश्वर्य तेरे लिये मेरा पारितोषिक है। और मेरी महानता तेरे लिये मेरी दया है। और जो वस्तु मेरे लिये योग्य है उसको न कोई समझता है और न उस पर कोई मनुष्य पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकेगा। मैंने उसको अपने गुप्त कोषों में और अपने धर्म के वितानों में सुरक्षित कर दिया है। यह अपने जनों पर मेरी दया और कृपा है।

(६६) ऐ पवित्र और गुप्त आत्मा के पुत्रो!

मुझ से प्रेम करने में तुम पर प्रतिबन्ध लगाये जायेगें। और आत्माएँ मेरे वर्णन से व्याकुल होंगी। क्योंकि बुद्धियां मुझे समझने की शक्ति नहीं रखतीं। और मन मुझे पाने के योग्य नहीं।

(६७) ऐ सौंदर्य के पुत्र!

अपनी आत्मा अपनी दया अपनी कृपा और अपनी सुन्दरता की सौगन्ध। अपनी अधिकार की भाषा से जो कुछ मैंने तुझ पर प्रेरणा की और शक्ति की लेखनी से मैंने जो अङ्कित किया वह तेरी योग्यता और बुद्धि के अनुसार था। न कि मेरी महान योग्यता और व्याख्यान शक्ति के अनुसार।

(६८) ऐ मनुष्य पुत्रो !

क्या तुम्हें ज्ञान है कि हमने तुमको एक ही मृतिका से क्यों उत्पन्न किया । इस कारण कि कोई जन दूसरे जनों पर अभिमान न करे । प्रत्येक समय अपनी उत्पत्ति पर विचार करते रहो । अब उचित यह है कि जिस प्रकार हमने तुमको एक ही वस्तु से उत्पन्न किया तुम भी एक जीव के समान बन जाओ । मानों तुम एक ही पांव से चलते हो । और एक ही मुखसे भक्षण करते हो । और एक ही पृथ्वी पर चलते हो । जिससे कि तुम्हारी आत्माओं से और तुम्हारे कर्म कार्यों से ऐक्यता के चिन्ह और सिद्धी के भाव प्रगट हों । ऐ ! प्रकाशों के समूह तुम्हारे लिये मेरा यह उपदेश है । इससे शिक्षा प्राप्त करो । जिससे कि तुम अद्भुत-विलक्षण गौरवता के वृक्ष से पवित्र फल प्राप्त करो ।

(६९) ऐ आत्मा के पुत्रो !

तुम मेरे कोष हो । क्योंकि मैंने तुम्हारे अन्तःकर्ण में अपने ज्ञान और अपने रहस्यों के मोती एकत्रित किये हैं । तुम मेरे सेवकों में से परायों और मनुष्यों में से नास्तिकों से रक्षण करो !

(७०) ऐ स्वयम् व्यापक नृप के पुत्र !

जान ले कि मैंने स्वर्ग लोक की सब सुगन्ध तेरे समीप भेजदी हैं । अपना पूर्ण वाक्य तुझे प्रदान कर दिया । तुझको अपनी

अद्भुत वस्तुएं पूर्ण रूप से प्रदान कर दीं। और तेरे लिये वही भाव रक्खा जो भाव अपने लिये था। तो तू मेरी इच्छा से प्रसन्न हो। और मेरा ऋणी हो।

(७१) ऐ मनुष्य पुत्र !

जो कुछ हमने तुझे प्रदान किया है उसे तू अपनी आत्मा की पट्टी पर प्रकाश की मसि से अङ्कित कर। और यदि तू यह न कर सके तो अपने हृदय के तत्व को अपनी मसि बना। और यदि तू यह भी न कर सके तो उस लाल मसि (रक्त) से लिख जो मेरे धर्म मार्ग में बहाया गया है। निःसन्देह यह मसि मुझे प्रत्येक वस्तु से अधिक प्रिय है। जिससे कि उसका प्रकाश सदा सर्वदा उपस्थित रहे।

बहाउल्लाह के रहस्य शब्द

द्वितीय विभाग

(फारसी से)

शक्तिशाली और शब्द दाता के नाम से ।

(१) ऐ बुद्धिमान और ज्ञानी मनुष्यो !

प्रेम हितैषी ईश्वर का प्रथम प्रेम सन्देश यह है कि, ऐ ! आत्मकोकिल आत्मा की वाटिका के अतिरिक्त कहीं निवास न कर। ऐ ! प्रेम रूपी सुलेमान के दूत ! अपने प्रिय मनोहर नगर के अतिरिक्त किसी देश को ग्रहण न कर । और ऐ ! अमर अनक्का हित पर्वत के अतिरिक्त कहीं स्थान ग्रहण न कर । तेरा स्थान यही है । यदि तू आत्मा के पंखों से निःसीम स्थान तक उड़े । और अपने वास्तविक स्थान का विचार करे ।

(२) ऐ आत्मा के पुत्र !

प्रत्येक पक्षी अपने घोंसले की खोज में रहता है और प्रत्येक बुलबुल का ध्येय गुलाब के फूल का सौंदर्य है। परन्तु मानव हृदय के पक्षी नाशवान मृतिका से (सांसारिक पदार्थों) से संतुष्ट होकर सर्व सर्वदा रहने वाले घोंसले से दूर जा पड़े ।और अचेतन की दलदल को ग्रहण करके ईश्वरीय

द्वार के पुष्पों से वंचित रह चुके हैं । इनकी इस अधिक विलक्षण दशा पर शोक, खेद और पश्चाताप है कि एक लोटा जल प्राप्त करने के पश्चात् इष्ट मित्र के तरंगे पूर्ण समुद्र से विमुख हैं । और गौरवता के नभ से दूर हैं ।

(३) हे मित्र !

अपने हृदय की वाटिका में प्रेम के पुष्प के अतिरिक्त और कोई वस्तु न हो । और हार्दिक प्रेम की बुलबुल का पल्ला न छोड़ । भद्र पुरुषों की सुसंगति को श्रेष्ठ जान और नीच मनुष्यों की कुसंगति से मन और कर दोनों को विलग कर ।

(४) हे न्याय के पुत्र !

प्रेमप्रियके नगरके अतिरिक्त प्रेमी कहाँ रह सकता है । और इच्छुक अपनी मन की आशा के अतिरिक्त किसी और वस्तुसे आनन्द प्राप्त नहीं कर सकता । एक वास्तविक प्रेमी के लिये तो प्रेम प्रिय का मिलाप ही जीवन है । और उसका विरह मृत्यु है । प्रेमियों के हृदय धीरज से खाली है । और उनके मन सहन शक्ति से अद्वेष्टा होते हैं । यदि उनके शरीरमें लक्ष प्राण भी हों तो उन सब को बलिदान करके प्रेम प्रिय की गली की ओर दौड़ पड़ते हैं ।

(५) हे मृतिका के पुत्र !

मैं तुझ से सत्य कहता हूँ । कि सब से अधिक अचेत वह मनुष्य है जो केवल बातों पर विवाद करता है । और अपने

भ्राता के सन्मुख बड़ा बनने के विचार में सलग्न रहता है। कहदे कि ऐ ! प्रिय बन्धु अपने कर्मों से अपने को सुसज्जित करो न कि बातों से।

(६) हे पृथ्वी के पुत्र !

सत्य जानो और विश्वास करो कि जिस हृदय में लेश मात्र भी ईर्षा शेष है वह मेरे त्रिकालिक राज्य में कभी प्रवेश नहीं कर सकता। और न मेरे स्वर्ग राज्य की पवित्र सुगन्ध सूंघ सकता है।

(७) हे प्रेम के पुत्र !

मेरी समीपता की ऊंचाइयों से और आत्मिक प्रेम के आकाशी वृक्ष से तेरा एक डग का अंतर रहा है। तू एक डग भर और दूसरे डग के साथ नित्य सर्वदा के राज्य की ओर आगे धप और अमर जीवन के वितानों में प्रवेश हो जा। इस कारण गौरवांकित लेखनी से जो कुछ प्रेरणा हुई है उसे सुन ।

(८) हे प्रतिष्ठा के पुत्र !

ईश्वर के पवित्र मार्ग में तीव्र गामी होजा। और मिलन के स्वर्ग में मेरे साथ पदारपण कर। अपने हृदय को आत्मा के तेज से स्वच्छ कर । और श्रेष्ठ लोक की ओर दौड़ता हुआ जा।

(६) हे नाशवान प्रतिबिम्ब !

भ्रम के नीच पदों को त्याग कर विश्वास की उत्तम और सराहना योग्य शिखा तक पहुंच । सत्यता के नेत्रों को

खोल । जिससे कि तू महान प्रकाशित स्वरूप को बिना घुंघट देखे। और पुकार उठे कि ईश्वर की जय हो। जो सम्पूर्ण जन्मदाताओं में सब से श्रेष्ठ और उत्तम सृष्टा है।

(१०) हे लालच के पुत्र !

ध्यान देकर सुन। कि नाशवान नेत्र अनादि स्वरूप को पहचान नहीं सकते। मृत हृदय कुमल्हाये हुये फूल के अतिरिक्त किसी और वस्तु को ग्रहण नहीं कर सकता। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य अपने ही जैसे की खोज करता है। और अपने जैसे से परिचित होता है।

(११) हे मृतिका के पुत्र !

नेत्रहीन बन, जिससे कि तू मेरे स्वरूप के दर्शन कर सके और बहिरा बन, जिससे कि तू मेरे मनोहर संगीत को श्रवण कर सके अज्ञानी बन, जिससे कि तू मेरे ज्ञान का अंश प्राप्त कर सके। कंगाल बन, जिससे कि तू मेरे अमिट धन के समुद्र से नित्य वर्तमान भाग प्राप्त करे। नेत्रहीन हो अर्थात् मेरे स्वरूप के अतिरिक्त किसी को दृष्टि गोचर न कर। बहिरा बन। अर्थात् मेरे वाक्य के अतिरिक्त किसी का वाक्य श्रवण न कर। और अज्ञानी होजा अर्थात् मेरे ज्ञान के अतिरिक्त कोई ज्ञान प्राप्त न कर। जिससे तू सुदृष्टि, पवित्र हृदय और चित्तांकित श्रवण के द्वारा मेरे स्वर्गलोक में प्रवेश कर सके।

(१२) हे दो नेत्रों वाले !

एक नेत्र मूँद ले, और एक खोल दे । अर्थात् संसार और संसार वालों की ओर से मूँद ले । और प्रिय के पवित्र स्वरूप के दर्शन में खोलदे ।

(१३) हे मेरे बालको !

मुझे भय है कि कहीं तुम स्वर्ग कोकिल के संगीत से लाभ उठाये बिना नष्ट न हो जाओ । और पुष्प की सुन्दरता के दर्शन किये बिना पानी और मिट्टी की ओर लौट न जाओ ।

(१४) हे मित्रो !

नाशवान सुन्दरता के लिये सर्व सर्वदा स्थापित रहनेवाली सुन्दरता को न त्यागो । और अपना मन इस नाशवान संसार से न लगाओ ।

(१५) हे आत्मा के पुत्र !

वह समय आ रहा है जब कि पवित्र और आत्मिक कोकिल आत्मिक रहस्यों को न बखानेगी । और तुम सब महान दयालु और परम पवित्र परमात्मा की ध्वनि से वंचित रह जाओगे ।

(१६) हे अचेतता के तत्व !

लचों रहस्य की रसना एक जिव्हा बोल रही है । और लचों गुप्त अर्थ एक उच्चारण से प्रगट हो रहे हैं । परन्तु शोक है कि कोई श्रोता नहीं । और कोई ऐसा हृदय नहीं जो

एक अक्षर भी ग्रहण कर सके ।

(१७) हे संगियो !

स्थान रहित जगा के द्वार खोल दिये गये । और प्रिय प्रेमी का निवास प्रेमियों के रक्त से सुसज्जित है । परन्तु कुछ मनुष्यों के अतिरिक्त सब के सब इस अतिरिक्त निवास से वंचित हैं। और इन थोड़ों में से भी शुद्ध हृदय वाले और पवित्र आत्मा वाले बहुत ही कम दृष्टि गोचर होते हैं ।

(१८) हे ऊँचे स्वर्ग निवासियो !

श्रद्धालुओं को सूचना दे दो कि पवित्र स्थान में रिज़वान के पास एक नवीन वाटिका प्रगट हुई । जिसके चारों ओर ऊँचे स्वर्ग निवासी और सम्पूर्ण उच्च पदाधिकारी परिक्रमा लगा रहे हैं । अतः प्रयत्न करो कि तुम इस स्थान तक पहुँच जाओ । और प्रेम के रहस्य पूर्ण पुष्पों को इसके कंटकों में से खोज सको । और ईश्वर के पूर्णज्ञान को उसके त्रि-कालिक फलों से प्राप्त कर सको । ठंडे हैं उनके नेत्र जो इसमें शान्तिपूर्वक प्रवेश कर गये हैं ।

(१९) हे मेरे मित्रो !

क्या तुम वह प्रकाशित प्रातःकाल भूल गए हो । जब तुम सब उस प्रेम वृक्ष के नीचे जो गौरव पूर्ण स्वर्ग में रोपा गया है, मेरे सन्मुख इकट्ठे हुए थे ? उन्मत्त होकर तुम सब ने वह तीन पवित्र शब्द सुने जो मैंने उस समय

उच्चारे । ऐ मित्रो ! अपनी अभिलाषाओं को मेरी इच्छा से अधिक मत जानो । कभी भी उस वस्तु की तमन्ना न करो जिसे मैंने तुम्हारे लिये नहीं चाहा । और मृत हृदयों से जो सांसारिक कामनाओं तथा वासनाओं से अपवित्र हो चुके हैं मेरे समीप न आओ । जो तुम अपने मनों को शुद्ध कर लो तो शीघ्र ही उस स्थान और वातावरण का चित्र तुम्हारे सन्मुख अङ्कित हो जायगा, और मेरी वाणी की सचाई तुम पर प्रगट हो जायगी ।

स्वर्ग के पंचम पत्र की अष्टमी पवित्र पंक्ति में परम परमात्मा बखान करते हैं कि:—

२०) ए अचेतना की शय्या पर पड़े हुए मृतक मनुष्यों !

शताब्दियाँ व्यतीत हो गई हैं और तुम्हारी अमूल्य अवस्था समाप्त हो चुकी है । परन्तु तुममें से एक भी पवित्र श्वास हमारे दरबार तक न पहुँचा । तुम नास्तिकता के समुद्र में डूबे हुये हो । परन्तु तुम्हारी रसना पर उसके एक होने का शब्द प्रचलित है । जिससे मुझको घृणा है । उसको तुमने प्रिय प्रेमी समझा और मेरे शत्रु को अपना मित्र बनाया है । इसके होते हुवे भी तुम मेरी पृथ्वी पर असीम प्रसन्नता और प्रफुल्लितता के साथ विचरण करते हो किन्तु इससे अचेत हो कि मेरी पृथ्वी तुमसे अप्रसन्न है, और उसकी प्रत्येक वस्तु तुमसे दूर भागती है । यदि

अपने नेत्र किंचित मात्र (लेश मात्र) भी खोलो तो लचों शोको को इस प्रसन्नता से उत्तम और मृत्यु को इस जीवन से श्रेष्ठ समझोगे ।

(२१) हे चलायमान मृतिका !

मैं तुझसे प्रेम करता हूँ, परन्तु तू मुझसे निराश है । तेरी बग़ावत भरी तलवार ने तेरे आशाके वृक्ष को काट दिया है। मैं सर्वदा तेरे समीप रहता हूँ। परन्तु तू प्रत्येक समय मुझसे दूर रहता है। मैंने तेरे लिये असमाप्त प्रतिष्ठा का प्रस्ताव रक्खा। परन्तु तूने असीम निष्कृष्ठता अपने लिये चाही। फिर भी जब तक समय शेष है ध्यान दे। और अवसर को हाथ से न जाने दे।

(२२) हे लालच के पुत्र !

बुद्धिवानों ने ईश्वर मिलाप प्राप्त करने का वर्षों प्रयत्न किया किन्तु निष्फल रहे। सम्पूर्ण अवस्था परिश्रम में व्यतीत की किन्तु उसका दर्शन प्राप्त न हुवा । परन्तु तू बिना किसी प्रयत्न के अपने ध्येय तक पहुँच गया। और बिना खोज किये तेरा अर्थ पूर्ण हो गया। इस पद और पदवी के होते हुये तेरी प्रवृत्ति ने तेरे नेत्रों पर ऐसा पट डाला है कि तेरी दृष्टि प्रिय मित्र की सुन्दरता पर न पड़ी। और न तो तेरा कर प्रेम प्रिय के पल्ले तक पहुँचा। बस, ऐ ! यह अचम्भे का अनुभव करो।

(२३) हे प्रेमनगर के निवासियों !

नष्ट होने वाली वायु ने सर्व सर्वदा स्थापित रहने वाली ज्योति को घेर लिया है । और अद्भुत यौवन का सौंदर्य काली धूल के अन्धेरे में लुप्त हो गया है । प्रेम का सम्राट अन्याय की जनता के करों से दुखी है । और पवित्र कबूतर उलूकों के पंजों में बन्दी है । प्रकाश के वितानों के और ईश्वरीय सिंहासन के निवासी हाय हाय कर अश्रूधारा बहा रहे हैं । परन्तु तुम अचेतता की भूमि पर विश्राम कर रहे हो। फिर भी स्वयम् को हितैषी मित्रों में गणना करते हो । देखो तो तुम्हारे विचार कितने व्यर्थ हैं ।

(२४) हे विद्वान कहलाने वाले मूर्खो !

तुम क्यों प्रगटता में ग्वाले होने की डींग मारते हो । जब वास्तव में तुम मेरी भेड़ों के लिये भेड़िये हो । तुम्हारा उदाहरण उस उडगन का सा है जो प्रातः होने से पूर्व प्रगट होता हैं और रोशन व चमकदार है । परन्तु वास्तव में मेरे नगर और देश के यात्रिओं के भटकने और नष्ट होने का कारण है ।

(२५) हे देखने में भले परन्तु हृदय के मलिन मनुष्यों !

तुम्हारा उदाहरण उस स्वच्छ और चमकीले कडुवे पानी के समान है । जो प्रगट में अधिक स्वच्छ और सुन्दर ज्ञात होता है । परन्तु दैवी स्वाद परीक्षक उसे परखता है तो

उसकी एक बूंद भी पसन्द नहीं करता । वास्तव में सूर्य का प्रकाश मृतिका और दर्पण पर समान ही पड़ता है। किन्तु दोनों में पृथ्वी और आकाश का अन्तर है। बल्कि असीम अन्तर है।

(२६) हे मेरे नाममात्र मित्र !

कुछ विचार कर क्या तूने मित्र और शत्रु को कभी एक ही हृदय में रहते सुना है । तो तू परायों को निकाल दे । जिससे कि प्रेम प्रिय अपने गृह में प्रवेश करे ।

(२७) हे मृतिका के पुत्र !

आकाश और पृथ्वी में जो वस्तु भी है वह मैंने तेरे निमित्त निर्माण की है । परन्तु मनों को अपने स्वरूप और गौरवता का प्रगट स्थान नियुक्त किया । परन्तु तूने मेरा विश्राम स्थान दूसरों को दे दिया । तो जब कभी मेरे पवित्र अवतार ने अपने गृह की ओर मुख किया तो पराये को वहां वर्तमान पाया । और गृह में प्रवेश किये बिना ही अपने प्रेम प्रिय के दरबार की ओर भाग आया । इतना होते हुए भी मैंने तेरे दोष छिपाये । और तेरे लज्जित होने को अच्छा नहीं समझा ।

(२८) हे लोभ के तत्व !

मैं ईश्वरीय लोक के पूर्व से प्रातःकाल वहुधा तेरे गृह में आया । और तुझको विश्राम शय्या पर अपने से पराये के

साथ सलग्न पाकर आत्मिक विद्युति के समान जो सम्राटी प्रतिष्ठा के घनों में चमकती हैं लौट आया । और अपने एकान्त स्थान में निवास करने वाली पवित्र सेनाओं के सम्मुख इसका वर्णन न किया ।

(२९) हे कृपा पुत्र !

न होने की घाटियों में से मैंने तुझको अपनी आज्ञा की मृतिका के द्वारा संसार में प्रगट किया । और संसार के प्रत्येक कण और सृष्टि की वास्तविक वस्तुओं को तेरी शिक्षा के लिये नियुक्त किया । अतः माता के उदर से प्रगट होने से पूर्व दूध के दो स्रोते तेरे लिये स्थापित किये । और नेत्रों को तेरी सुरक्षा के लिये नियुक्त किया । और मनुष्यों के हृदय में तेरा प्रेम भर दिया । और वास्तविक कृपा से मैंने अपनी दया के प्रतिबिम्ब में तेरा पालन पोषण किया । और वास्तविक करुणा और दया से तेरी रक्षा की । इन सब उपायों से मेरा तात्पर्य यह था कि तू मेरी सदा सर्बदा स्थापित रहने वाले राज्य को प्राप्त करे । और मेरे रहस्य पारितोषिको के योग्य हो जाय । परन्तु तू गाफिल रहा । और जब तरुणावस्था को प्राप्त हुआ तो मेरे सम्पूर्ण पारितोषिकों से अचेत हो गया । और अपने असत्य विचारों में इसप्रकार उन्मत्त हुआ कि उन वस्तुओं को पूर्णरूप से भूल गया । और तूने मित्र के द्वार को त्यागकर मेरे शत्रु के प्रसाद (महल) में निवास किया ।

०) हे संसार के बन्दी !

बहुधा प्रातःकाल मेरी दया की मन्द सुगन्ध वायु तेरे ऊपर चली। परन्तु तुझको अचेतता की शय्या पर निद्रा ग्रहित पाकर तेरी दशा पर रोई पीटी और लौट गई।

१) हे पृथ्वी के पुत्र !

यदि तू मुझे चाहता है तो मेरे अतिरिक्त किसी से प्रेम न कर। और यदि तू मेरे स्वरूप के दर्शन चाहता है तो सम्पूर्ण संसार आदि से अपनी दृष्टि हटाले। क्योंकि मेरा प्रेम और मुझसे पराये का प्रेम अग्नि और जल के समान है। जो एक हृदय में नहीं समा सकते।

२) हे अद्वितीय मित्र से पराये !

तेरे हृदय का दीपक मेरे शक्तिवान् हाथों से जलाया गया है। उसको अपनी कामी प्रवृत्तियों की विरुद्ध वायु से न बुझा। और मेरा वर्णन करना तेरे सब रोगों की चिकित्सा है। उसको न भूल। मेरे प्रेम को अपना अमूल्य कोष बना। और उसको अपने नेत्रों और जीवन के समान प्रिय रख।

३) हे मेरे भाई !

मेरी मधुर वाणी से मेरे प्रिय वाक्य को सुन। और मेरे लावण्य अधर से जो आत्मिक और पवित्र स्रोता प्रवाहित हो रहा है उसे पान कर। अर्थात् मेरी बुद्धि के बीज अपने हृदय की पवित्र भूमि में बो। और श्रद्धा के जल से उन्हें सींच। जिससे कि मेरी बुद्धि और मेरे ज्ञान के पुष्पों के हरे

भरे पौधे तेरे दिल की पवित्र नगरी में उत्पन्न हो जायें।

(३४) ऐ मेरे स्वर्ग के निवासियो !

तुम्हारे प्रेम और मित्रता के वृक्ष को मैंने स्वर्ग की पवित्र वाटिका में प्रेम युक्त करों से आरोपण किया है। और अपनी दया वृष्टि से उसे सींचा है। अब उसके फल देने का समय है। प्रयत्न करो जिससे यह सुरक्षित रहे। और विषय विकार और प्रवृत्ति की लपट से भस्म न हो जाये।

(३५) ऐ मेरे मित्रो !

अचेतता के दीपक को बुझा दो और धर्मोपदेशों के सदा सर्वदा प्रकाशवान दीपकों को अपने मन और हृदय में प्रकाशित कर लो।

क्योंकि शीघ्र ही मनुष्यों के परीक्षक अपने ईश्वर के सन्मुख सत्य [प्रवृत्ति और पवित्र कर्मों के अतिरिक्त और कोई वस्तु स्वीकार न करेंगे।

अद्भुत विलक्षण ज्ञान की दुलहिन जो व्याख्यान के पटों में छुपी थी ईश्वरीय कृपा व ईश्वरीय दया और कृपा से प्रेम प्रिय के स्वरूप और प्रकाशित किरण के समान प्रगट हो गई।

मैं साक्षी हूँ। ऐ मित्रो ! प्रदान पूर्ण हो गया। प्रमाण भी सम्पूर्ण हुआ। प्रमाण भी पूर्ण प्रगट और सिद्ध हो गया।

तुम्हारा साहस-प्रयत्न निर्मोह और भक्ति कैसे कैसे पद प्रगट करती है।

इसप्रकार तुम पर और आकाश और पृथ्वी निवासियों पर प्रदान पूर्ण हो गया।

सब महिमा ईश्वर के ही लिये है। जो सम्पूर्ण संसारों का पालनकर्ता है।

(३६) ऐ मृतिका के पुत्र !

बुद्धिवान मनुष्य वह है जो जब तक कोई श्रोता नहीं बाते नहीं बोलते। जिस प्रकार कि साक़ी जब तक कोई याचना नहीं करे मदिरा का पात्र नहीं देता।

और एक प्रेमी जब तक प्रेम प्रिय की सुन्दरता को दृष्टिगोचर नहीं कर लेता व्याकुल नहीं होता।

अतः आवश्यक है कि हृदय की पवित्र भूमि में विद्या और ज्ञान के बीज आरोपण कर और छुपाए रख। जिससे कि ईश्वरीय ज्ञान के पुष्प हृदय की भूमि से उत्पन्न हों न कि दलदल और मृतिका से।

उपरोक्त लिखित पत्र की प्रथम पंक्ति में अङ्कित है और ईश्वरीय रचा के वितानों में यह रहस्य गुप्त है।

(३७) ऐ मेरे सेवक !

नष्ट न होने वाले राज्य को नाशवंत वस्तुओं के लिये न

त्याग । और कमनीय इच्छा के हेत स्वर्ग राज्य को न छोड़ । यह है जीवन का स्रोता जो दयालु ईश्वर की लेखनी की नदी से प्रवाहित हुआ है । इस जल पान करने वालों को धन्यवाद है ।

(३८) ऐ आत्मा के पुत्र !

पिंजरे को तोड़ दे । और प्रेम के हुमाँ (पक्षी) के समान पवित्र वायु में उड़ । अपनी हस्ती को भूल जा । और ईश्वरीय आत्मा के द्वारा ईश्वर के पवित्र राज्य में विश्राम कर ।

(३९) ऐ रेत के पुत्र !

एक दिन के आराम पर सन्तोष न कर । और अनादि शान्ति को न त्याग ।

अमर आनन्द की वाटिका को नाशवन्त संसारी मृतिका के ढेर से बदला न कर । अपने बन्दीगृह से ऊंचे प्रकाशित वितानों की ओर प्रस्थान कर । और अपने नाशवान पिंजरे से स्थान रहित स्वर्ग की तरफ विहार कर ।

(४०) ऐ मेरे सेवक !

दुन्यवी बन्धनों से मुक्त हो जा । और काम के बन्दीगृह से अपने आत्मा को स्वतन्त्र कर । इस अवसर को अमूल्य जान । इस कारण कि यह समय तू फिर न पाएगा ।

(४१) ऐ मेरी दासी के पुत्र !

यदि तू अमर साम्राज्य को देखे तो तू प्रयत्न करेगा कि इस चलित संसार से भाग जाय।

किन्तु तुझसे एक को गुप्त रखने और दूसरे को प्रगट करने में भी एक रहस्य है।

जिसको पवित्र हृदयों के अतिरिक्त कोई नहीं जान सकता।

(४२) ऐ मेरे सेवक !

मन को द्वेष से शुद्ध कर और ईर्षा से निर्दोष होकर पवित्र दैवी दरबार में प्रवेश कर।

(४३) ऐ मेरे मित्रो !

स्नेही के बताए हुए आनन्द मार्ग में चलो। और याद रखो कि उसकी प्रसन्नता उसके जनों के सुख में ही थी और रहेगी। अर्थात् एक मित्र दूसरे मित्र की इच्छा के विरुद्ध उसके गृह में प्रवेश न करे। और उसकी वस्तुओं को हाथ न लगाए। और अपनी इच्छा को उसकी इच्छा से अग्रसर प्रतीत न करे।

और अपने आपको किसी विषय में मख्य समझ कर लाभ न ले।

ऐ ! बुद्धिवानो इस पर विचार करो।

(४४) ऐ मेरे सिंहासन के साथी !

कोई बुराई न सुन और कोई बुराई न देख । अपने आपको नीच न कर । चीख पुकार न कर । अर्थात् कोई बुरी बात न कह । जिससे कि तू भी कोई बुरी बात न सुने । मनुष्यों के दोषों को अधिक न समझ जिससे कि तेरे दोष भी बड़े मालूम न हों । किसी के अपमान पर प्रसन्न न हो । जिससे कि तेरा भी अपमान न हो । बस शुद्ध हृदय, पवित्र मन और पवित्र प्रवृत्ति के साथ अपने इस जीवन में जो कि एक पल से भी न्यून है शान्ति प्राप्त कर ले ।

जिससे कि तू शान्ति और आनन्द के साथ इस नाशवान शरीर को त्याग कर सके । आत्मिक स्वर्ग की ओर चित्तांकित हो । और अनादि राज्य में स्थान प्राप्त करे ।

(४५) अफसोस ! अफसोस ! ऐ संसारिक इच्छाओं से प्रेम करने वालो !

शोक है शोक है तुम विद्युत के समान आत्मिक प्रेम प्रिय के समीप से चले गये हो । और राक्षसी विचारों से लुप्त हो । तुम अपने भ्रमों की पूजा करते हो । और उसका नाम तुमने सत्य रक्खा है । तुम्हारी दृष्टि कंटक पर है । और उसको तुम पुष्प कहते हो ।

तुमने स्वतन्त्रता का कोई स्वाँस नहीं लिया है । न

तुम्हारी हृदय वाटिका से वियोग की वायु प्रवाहित हुई है। तुमने प्रेम प्रिय के प्रेम पूर्ण उपदेशों को दूर फेंक दिया है। और अपने मन से मिटा दिया है।

और पशुओं के तुल्य तुम अपनी इच्छाओं और आशाओं के हरितांचल में भोग विलास कर रहे हो।

(४६) ऐ मार्ग के साथियो !

तुम प्रेम प्रिय के वर्णन करने से क्यों अचेत हो। और प्रेम प्रिय की पवित्र सभा में प्रवेश होने से दूर हो।

निरंकार स्वरूप अपने अद्वितीय पटों में अपने शक्तिशाली गौरवता के सिंहासन पर विराजमान हैं। और तुम अपनी इच्छाओं के अनुसार झगड़ों में सलग्न हो।

पवित्र मन्द सुगन्ध वायु प्रवाहित है। और कृपा की वायु झोंके खा रही है। परन्तु तुम सब को ज़ुकाम (श्लेष्मा) हो रहा हैं। और तुम सब उससे वंचित हो। शोक है तुम पर और उन पर जो तुम्हारे अनुयायी हैं। और तुम्हारे पद चिन्हों पर चलते हैं।

(४७) ऐ आशाओं के पुत्रो !

तुम घमण्ड के वस्त्रों को अपने शरीर से उतार दो। और अपने अभिमान के बसन को शरीर से पृथक कर दो।

पुखराज रूपी पत्र में जो गुप्त लेखनी से लिखा गया है तृतीय पंक्ति में यह अङ्कित है।

(४८) ऐ भाईओ !

एक दूसरे से प्रेम का वर्ताव करो।

संसार से मन न लगाओ। प्रतिष्ठा पर अभिमान न करो। और अपनी कम प्रतिष्ठा से लज्जित न हो।

मुझे अपने स्वरूप की सौगन्द। मैंने सब को मिट्टी से उत्पन्न किया और अवश्य मृतिका में मिला दूंगा।

(४९) ऐ मृतिका के पुत्रो !

अमीरों को कंगालों के मध्य रात्रि के रोने की सूचना दे दो। ऐसा न हो कि अचेतता के कारण वह नष्ट हो जायें। और कल्प वृक्ष से वंचित रह जाय। दान और पुण्य मेरा स्वभाव है।

धन्यवाद है उसे जो मेरे स्वभाव से सुसज्जित है।

(५०) हे मृतिका के पुत्रो !

लालच को त्याग। और सन्तोष को पैदा कर। इसलिये कि लोभी सर्वदा वंचित रहता है। और सन्तोषी सर्वदा प्रिय और स्तुत्य होता है।

(५१) हे मेरी दासी के पुत्र !

निर्धनता से व्याकुल नहीं होना चाहिए। और धन दौलत पर भरोसा नहीं करना चाहिए। प्रत्येक कंगाली के पश्चात्

धन प्राप्त होता है । और प्रत्येक धन पश्चात् निर्धनता होती है ।

परन्तु ईश्वर के अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु से कंगाल हो जाना महान् धनाढ्यता है । इसे मूल्य रहित न समझो । क्योंकि उसके अन्त में निर्लेप पद प्राप्त हो जाता है । इस स्थान पर यह व्याख्यान गुप्त है । कि "सचमुच तुम सब कंगाल हो" ।

और यह पवित्र वाक्य कि "परमात्मा ही धनाढ्य है," प्रातःकाल के समान प्रेमी के हृदय क्षितिज पर प्रगट और प्रकाशित हो जायेगा । और वह सन्तोष सिंहासन पर विराजमान हो जायेगा ।

(५२) ऐ अचेतता और लोभ के पुत्रो !

तुमने मेरे शत्रु को मेरे गृह में प्रवेश करने दिया । और मेरे मित्र को बाहर निकाल दिया । क्योंकि तुमने मुझ से अतिरिक्त पराये से प्रेम को अपने हृदय में स्थान दिया । मित्र की बातों को ध्यानपूर्वक श्रवण करो । और उसके स्वर्ग की ओर मुख करो । दिखावटी मित्र निज स्वार्थ के लिये एक दूसरे को मित्र बनाते रहे और बना रहे हैं । परन्तु तुम्हारा वास्तविक मित्र केवल तुम्हारे लाभ के लिये तुमसे प्रेम करता है । बल्कि मुख्य तुम्हें सतमार्ग पर चलाने के लिये ही उसने बहुत से संकट सहन करने स्वीकार किये ।

ऐसे मित्र से बेवफाई न करो। और उसकी गली की ओर दौड़ जाओ। यह है सत्यता और मित्रता का सूर्य जो कि बहु नामधारी परमात्मा की उदय स्थान के समान उंगलियों से चमका है। तुम सब उस त्रिकालिक ईश्वर का वाक्य श्रवण करने के लिये अपने श्रवण खोलो जो कि संकटों में सहायता करने वाला और स्वअस्तित्व का स्वामी है।

(५३) ऐ नाशवान धन पर घमण्ड करने वालो !

सचमुच धन जिज्ञासु और याचक, प्रीतम और प्रिय के दरम्यान एक दृढ़ दीवार है। गिने चुने धनवानों को छोड़ कर और सब धनवान उसके दरबार के समीप स्थान को कदापि नहीं पा सकते।

और न उसकी प्रसन्नता और उस पर भरोसा करने के नगर में प्रवेश कर सकते हैं। बस धन्यवाद है उस धनवान को जिस को सांसारिक धन स्वर्ग धन से न रोके। और अनादि धन से वंचित न रक्खे। ईश्वर के महान पवित्र नाम की सौगन्द इस धनवान का प्रकाश स्वर्ग निवासियों को इस प्रकार प्रकाशित करता है जैसे सूर्य पृथ्वी निवासियों को।

(५४) ऐ संसार के धनवानो !

कंगाल मनुष्य तुम्हारे मध्य में मेरी धरोहर हैं। मेरी धरोहर की रक्षा करो। और केवल अपने ही शरीर को सुख देने में संलग्न न हो।

(५५) ऐ लोभ के पुत्र !

धन की अपवित्रता से शुद्ध होजा । और शान्ति पूर्वक निर्धनता के नभों में विचरण कर । जिससे कि तू निर्मोहक स्रोते से ही सर्वदा रखने वाली सद् ामदिरा पान करे ।

(५६) ऐ मेरे पुत्र !

कुकर्मी मनुष्यों की संगति खेद (रंज) बढ़ाती है । और सत पुरुषों की सुसंगति मन के मैल को स्वच्छ करती है । जो मनुष्य ईश्वर के साथ सम्बन्ध रखना चाहता है उसको चाहिये कि भक्तों से सम्बन्ध रखे । और जो मनुष्य ईश्वर वाक्य श्रवण करना चाहता है उसको चाहिये कि उसके चुने हुवे सेवकों का वाक्य श्रवण करे ।

(५७) ऐ मृतिका के पुत्र !

सावधान ! बुरे मनुष्यों के प्रेम में न फंसना । क्योंकि अधर्मियों की संगति आत्मिक प्रकाश की नर्क की अग्नि में परिवर्तन कर देती है ।

(५८) ऐ मेरी दासी के पुत्र !

यदि तू पवित्र आत्मा का परोपकार प्राप्त करना चाहता है । तो भले मनुष्यों की संगति ग्रहण कर । क्योंकि उन्हें स्वर्ग के कलवारिन के हाथों से जीवन पात्र पान किया है । और वह मृत मनुष्यों के हृदयों को प्रातःकाल के समान प्रकाशित कर देते हैं ।

(५९) ऐ अचेतो !

यह विचार न करो कि तुम्हारे हृदय के भेद गुप्त रूप में है। बल्कि विश्वास करो कि वह मोटी लेखनी से अङ्कित मेरे सन्मुख प्रकट और प्रकाशित है।

(६०) ऐ मित्रो !

मैं सत्य यथार्थ कहता हूँ। कि जो कुछ तुमने अपने हृदयों में छुपा रक्खा है वह हमारे सामने सूर्य के प्रकाश के समान प्रगट है। उन (कुकर्मों) के गुप्त रखने का कारण हमारी दया और अनुग्रह है। न कि तुम्हारी योग्यता।

(६१) ऐ मनुष्य के पुत्र !

मैंने अपने अथाग दया सागर की एक बूंद संसार निवासियों पर डाली है। परन्तु किसी को चित्तांकित न पाया। सब मनुष्य ईश्वरीय सर्वव्यापकता की अमृत रूपी अनादि मदिरा को छोड़ कर अपवित्र मदिरा के रस की ओर आकर्षित है। और अमिट सौन्दर्य के मदिरा पात्र को त्याग कर नाशवान पात्र से सन्तुष्ट है। वह वस्तु कितनी निष्कृष्ट है जिससे वह सन्तुष्ट है।

(६२) ऐ मृतिका के पुत्र !

अमिट प्रेम प्रिय की अद्वितीय मदिरा की ओर से विमुख न हों।

और नाशवान और अपवित्र मदिरा की ओर आकर्षित न हो। भगवान की भक्ति की मदिरा पान कराने वाले के हाथों

से अमिट प्रसन्नता का मदिरा पात्र ले। जिससे कि तू ज्ञान-स्वरूप बन जाय। और गुप्त रूपी ईश्वरीय दूत के आत्मिक संगीतों को श्रवण करें।

कह दो! ऐ नीच प्रकृति के मनुष्यो तुमने मेरी पवित्र और अनादि मदिरा को त्याग कर नाशवान जल की ओर क्यों ध्यान दिया है।

(६३) कह दो ऐ पृथ्वी निवासियो!

इस बात को विश्वासनीय समझ लो कि एक अक्समात् आपत्ति तुम्हारे घात में है। और एक बड़ी कुई तुम्हारे ऊपर मंडरा रही है। यह विचार न करना कि जो कुछ तुमने किया है मेरी दृष्टि से अदृष्ट हो गया है। अपने स्वरूप की सोगन्द तुम्हारे सब कर्मों को मोटी लेखनी द्वारा हरे हीरे रूपी पत्रों में अङ्कित कर लिया गया है।

(६४) ऐ संसार के अन्यायियो!

ज़ुल्म से हाथ खींच लो। क्योंकि मैंने सौगन्द उठाई है कि किसी के अन्याय को क्षमा न करूंगा।

यह वह प्रतिज्ञा है जिसको मैंने अपनी सुरक्षित पुस्तक (लोह पुस्तक) अङ्कित किया है। और इस पर अपनी प्रतिष्ठा की मुहर लगाई है।

(६५) हे अपराधियो!

मेरी क्षमा शीलता ने तुमको और दृढ़ कर दिया है। और

मेरे धैर्य ने तुमको अचेत बना दिया है। इस हद तक कि तुम सत्यानाश के मार्ग में अपनी इच्छा की अग्निरूपी अश्व पर चढ़ कर निर्भय दौड़े चले जाते हो। मानो तुमने मुझे अचेत और अनभिज्ञ समझ लिया है।

(६६) हे निर्वासितो !

रसना मेरे ही वर्णन के लिये है। इसको किसी की पीठ पीछे बुराई करने से अपवित्र न करो। और यदि क्रोध बल तुम पर अधिकार कर ले तो अपने दोषों के याद करने में संलग्न हो जाओ।

किन्तु मेरी जनता को पीठ पीछे बुरा न कहो। क्योंकि तुम से प्रत्येक मनुष्य अपनी प्रकृति को दूसरों से बहुत अधिक जानकर और परिचित है।

(६७) ऐ भ्रम के पुत्रो !

जान लो जब प्रकाशवान प्रातःकाल पवित्र ईश्वरीय आकाश से उदय होती है तो फिर राक्षसी कर्म और भेद जो अन्धेरी रात्रि में किये जाते हैं प्रगट हो जाते है। और सर्व सांसारिक उनसे परिचित हो जाते हैं।

(६८) ऐ पृथ्वी की घास !

क्या कारण है कि तू स्निग्ध करों को अपने वस्त्रों से नहीं लगाता। किन्तु विकार और कामना से भरपूर मन से मेरे

साथ रहने का इच्छुक है। और मेरे पवित्र राज्य में प्रवेश होना चाहता है। खेद है ! शोक है। इस पर जो तू चाहता है।

(६९) ऐ मनुष्य पुत्रो !

पवित्र शब्द और सुकर्म ही स्वर्ग की ओर जाते हैं। प्रयत्न करो कि तुम्हारे कर्म दिखावा और स्वार्थ की अपवित्रता से शुद्ध हों। जिससे कि वह ईश्वरीय प्रतिष्ठित दरबार में स्वीकार हों। क्योंकि शीघ्र ही मनुष्यों को कसौटी पर परखने वाले (ईश्वरीय दूत) ईश्वर के सन्मुख निर्मल स्वभाव और पवित्र कर्मों के अतिरिक्त और कुछ स्वीकार न करेंगे। यह है बुद्धि और ज्ञान का सूर्य जो ईश्वरीय इच्छा के आकाश से उदय हुआ है। आकर्षित जनों को धन्यवाद।

(७०) ऐ आनन्द भोगी पुत्र !

सर्व सर्वदा वर्तमान संसार मनोहर संसार है। यदि तू इसमें प्रवेश करे। और अनादि राज्य बहुत ही श्रेष्ठ है। यदि तू नाशवान राज्य को त्याग कर आगे बढ़े।

ईश्वरीय मग्नता की प्रसन्नता मधुर है। यदि तू ज्ञान मदिरा का पात्र इस ईश्वरीय दास के करों से पान करे। यदि तू इन पदों को प्राप्त करे तो मृत्यु-नष्टता-परिश्रम और दोष से स्वतन्त्र हो जाय।

(७१) ऐ मेरे मित्रो !

तुम उस प्रतिज्ञा को स्मरण करो जो तुमने फ़ारान पर्वत पर जो ज़मान देश में स्थित है—मेरे साथ की थी। और ऊंचे पदाधिकारियों को और नित जीवन नगर के निवासियों को मैंने उस प्रतिज्ञा पर साक्षी बनाया था। अब मैं इस प्रतिज्ञा पर किसी को स्थित नहीं पाता।

वास्तव में घमण्ड और आज्ञा भंग करने में इस प्रतिज्ञा को तुम्हारे हृदयों से मिटा दिया है। इतना कि उसका चिन्ह तक शेष न रहा। मैंने परिचित होते हुवे चुप सहन किया और प्रगट नहीं किया।

(७२) ऐ मेरे सेवक !

तू चमकधारी (चमकीली) तलवार के समान है जो मैले म्याक की अन्धेरी में छुपी रहती है। और इस कारण जौहरियों पर उसके गुण और मूल्य छुपे रहते हैं।

बस तू इच्छा और लोभ के म्यान से निकल आ। जिससे तेरे गुण व मूल्य संसार वालों पर प्रगट हो जायँ।

(७३) ऐ मेरे मित्र !

तू मेरे पवित्रता के नभ का मार्तण्ड है। अपने आपको सांसारिक घृणाओं से अपवित्र न कर।

अचेतता के पटों को फाड़ दे। जिससे कि तू घनों के पीछे

से खुले मुख प्रकट हो जायें । और सम्पूर्ण संसार को जीवन के वस्त्रों से सुसज्जित कर दे ।

(७४) ऐ घमंड के पुत्रो !

संसार के थोड़े दिवस रहने वाले राज्य के हेतु तुमने मेरे सदा सर्वदा वर्तमान राज्य को त्याग दिया ।

तुम अपने आपको पीली और लाल वस्तुओं से सजाते हो और उस पर अभिमान करते हो ।

अपने स्वरूप की सौगन्द इन समस्त वस्तुओं को मृतिका के एक रंग के वितान में ले आऊंगा ।

और इन विभिन्न रंगों को नष्ट कर दूंगा । परन्तु उन मनुष्यों को नहीं मिटाऊंगा जो मेरा रंग धारण करेंगे । और यह सब रंगों से पवित्र होता है ।

(७५) ऐ अचेतता के पुत्रो !

नाशवान राज्य से प्रसन्न न हो । तुम्हारा उदाहरण उस अचेत पक्षी के समान है जो किसी वाटिका में एक डाल पर बैठा हुआ शान्ति पूर्वक गा रहा हो । कि अचानक मृत्यु का बहेलिया उसे पृथ्वी पर गिरा दे । और फिर न वह संगीत शेष रहे और न उसके शरीर और रंग का कोई चिन्ह । अतएव ऐ ! इच्छा और लोभ के वन्दियों उपदेश ग्राह्य करो ।

(७६) ऐ मेरी दासी के पुत्र !

सदा वाक्यों से उपदेश होता रहा है । किन्तु इस युग में यह नियुक्त हुआ है कि कर्मों से हो। अर्थात् यह चाहिए कि सम्पूर्ण पवित्र कर्म मनुष्य से प्रगट हों। क्योंकि वाक्यों में सब सम्मिलित है। परन्तु पवित्र और शुद्ध कर्म मेरे मित्रका ही भाग है; अतः तन-मन से प्रयत्न करो जिससे कि तुम कर्मोंमें मनुष्यों से सर्वोच्च हो जाओ। इस प्रकार हमने तुमको पवित्र और प्रकाशित ग्रन्थ में उपदेश प्रदान किया है।

(७७) ऐ न्याय के पुत्र !

रात्री के समय अमर आत्मा का सौन्दर्य वफ़ादारी के नियमों वाले पर्वत से ईश्वरीय लोक की अश्वत्थ वृक्ष (सद्रतुलमुन्तहा) ओर लौट गया। और इस प्रकार रोया पीटा कि स्वर्ग के समूह और ईश्वरीय लोक के निवासी भी रोने लगे।

इसके पश्चात् ज्ञात किया गया कि यह रोना पीटना किस कारण है। तो उसने उत्तर दिया कि मैं आज्ञानुसार वफ़ा-दारी के पर्वत पर प्रतीक्षा करता रहा।

परन्तु संसार निवासियों में हितार्थ का चिन्ह न पाया। और मैं लौटने के लिये उद्यत हुआ ही था कि कुछ पवित्र पंडुक दृष्टि गोचर हुईं। जो कि संसार के कुत्तों के पंजों में फंसी हुई थीं।

उस समय स्वर्ग की अपसराएं ईश्वरीय ज्ञान के प्रसाद से खुले मुख दौड़ती हुई आई। और उसके नाम ज्ञात किये। सम्पूर्ण बता दिये गये। किन्तु एक नाम नहीं बतलाया गया। जब आग्रह किया तो जिव्हा से नाम का प्रथम अक्षर निकला। उस पर ईश्वरीय ज्ञान के कुटियों के निवासी अपने-अपने गौरवपूर्ण स्थानों से निकल पड़े। और जब दूसरा अक्षर उच्चारण किया तो सब मृतिका पर गिर पड़े। इस समय ईश्वरीय द्वार के गुप्त स्थान से ध्वनि आई कि इससे अधिक ठीक नहीं। हम उनके व्यतीत और वर्तमान कर्मों के साक्षी हैं।

(७८) ऐ मेरी दासी के पुत्र !

दयालु ईश्वर की जिव्हा से ईश्वरीय ज्ञान के स्रोत जल को पान कर और ईश्वरीय वाक्य पूर्व दिशा से व्याख्यान के सूर्य के प्रकाश को भली भांति निरीक्षण कर और ईश्वरीय बुद्धि के बीज अपने हृदय की पवित्र भूमि में बो। और श्रद्धा के जल से सींच जिससे कि पवित्र भूमि से मेरे ज्ञान और बुद्धि के पुष्प उत्पन्न हों। और हरितांचल हों।

(७९) ए लोभ के पुत्र !

तू कब तक अपनी बुरी प्रवृत्तियों की वायु में उड़ता रहेगा। मैंने तुझे पंख इस कारण प्रदान किये कि तू ईश्वरीय ज्ञान की पवित्र वायु में वहार करे। न कि राक्षसी भ्रम के

आकाश में। मैंने तुझे अपने श्याम केशों के काढ़ने के लिये कंघी दी थी। न कि मेरा कंठ घायल करने के लिये।

(८०) ऐ मेरे सेवको !

तुम मेरी वाटिका के वृक्ष हो। तुम्हें आवश्यक है कि श्रेष्ठ और अद्भुत फल दो।

जिससे कि तुम स्वयम् भी और दूसरे मनुष्य भी लाभ उठायें।

अतः सब को आवश्यक है कि कला कौशलों और उद्यमों में प्रवृत हों।

ऐ बुद्धिवानों ! धन प्राप्त करने के साधन यही हैं और सच-मुच सब साधनों पर ही आधार रखते हैं। और इसके द्वारा ईश्वर की दया तुम्हें धनवान बना देगी। असफल वृक्षो अग्निदान के योग्य हैं और रहेंगे।

:१) ऐ मेरे सेवक !

महानीच मनुष्य वह है। जो पृथ्वी पर निष्फल वर्तमान है। और वास्तव में उनकी गणना मृतिकों में है। बल्कि ईश्वर के समीप इन व्यर्थ और निष्फल मनुष्यों से मुर्दे कहीं अधिक अच्छे हैं।

:२) ऐ मेरे सेवक !

सब से श्रेष्ठ वह मनुष्य हैं जो किसी उद्यम के द्वारा वृत्ति

प्राप्त करते हैं। और केवल ईश्वर के प्रेम के लिये अपने पर और अपने सम्बन्धियों पर व्यय करते हैं।

सदुपदेश

ईश्वर ही सर्व महान है।

प्रत्येक भलाई का मूल ईश्वर पर भरोसा करना। उसके धर्म के अनुयायी होना। और उसकी प्रसन्नता पर प्रसन्न होना है।

वास्तविक बुद्धि

गौरवशाली ईश्वर से डरना। और उसकी महाशक्ति और उसकी फटकार से भय मानना। और उसके न्याय और अधिकार के अवतारों से शिक्षा प्राप्त करना है।

धर्म का सर्वोच्च तत्व

ईश्वर की ओर से जो कुछ प्रेरणा हुई उसको स्वीकार करना। और जो कुछ उसके यथार्थ ग्रन्थों में आज्ञाएं प्रदान की गई है उनका पालन करना।

वास्तविक प्रतिष्ठा

सेवक का सन्तोष है उस वस्तु पर जो उसे प्रदान की गई। और जो कुछ उसके निमित्त भाग्य अङ्कित है उस पर प्रसन्न रहना।

प्रेम का तत्व

यह है कि सेवक अपने वास्तविक प्रेम प्रिय की ओर आकर्षित हो जाय । और उसके अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु से विमुख हो जाय । और उसकी चाहना और इच्छा अपने स्वामी की इच्छा के अतिरिक्त और कुछ न हो ।

वास्तविक स्मरण

स्तुत्य के स्मरण में प्रवृत होना और उसके अतिरिक्त सब से अचेत हो जाना ।

ईश्वर पर भरोसे का सर्वश्रेष्ठ ढंग

यह है कि मनुष्य संसार में कोई काम धंधा करे । और ईश्वर पर भरोसा और उसी पर दृष्टि रक्खे । क्योंकि मनुष्य के सम्पूर्ण विषय आदि व अन्त उसी की ओर लौटते हैं ।

त्याग का तत्व

ईश्वरीय दरबार की ओर आकर्षित होना । उस तक पहुँचना । उसी की तरफ दृष्टि रखना । और उसके सन्मुख उपस्थित हो जाना ।

प्राकृतिक स्वभाव का तत्व

यह है कि मनुष्य अपने वशीभूत इच्छा के अनुसार महान

प्रतिष्ठित और अधिकारी ईश्वर के सन्मुख अपनी निर्बलता और लघुपन को माने।

सर्वश्रेष्ठ मनुष्य

वह है जो कि मनुष्य पर ईश्वर ने जो कुछ प्रदान किया है उसको कार्यान्वित रूप में प्रगट करे। और प्रत्येक समय और प्रत्येक दशा में उसका उपकार माने।

सब से बड़ा व्यापार

मेरा प्रेम है। जिसके द्वारा प्रत्येक वस्तु प्रत्येक वस्तु से अनावश्यक हो जाती है। और इसके बिना प्रत्येक वस्तु को प्रत्येक वस्तु की आवश्यकता होती है। और यह प्रतिष्ठित और प्रकाशित लेखनी से अङ्कित की हुई निश्चित बात है।

सब से अच्छी नीति

बातों से कम और कार्यान्वित होने में अधिक होना है। जिसकी बातें उसके कार्य से अधिक हो उसे जान लो कि उसका न होना उसके होने से अच्छा और उसका नष्ट होना उसके जीवन से श्रेष्ठ है।

सुरक्षित रहने का रहस्य

कम बोलना। दूरदर्शी होना। और संसार वालों से पृथक रहना।

साहस का तत्व

मनुष्य का अपने लिये और अपने बाल बच्चों और कंगाल भाइयों के साथ परोपकार और कृतघ्नता है।

सर्वोच्च प्रतिष्ठा और वीरता

ईश्वरीय वाक्य को विख्यात करना। और उसके प्रेम में दृढ़ता से स्थापित रहना है।

सम्पूर्ण दोषों का मूल

मनुष्य की अपने स्वामी से अचेतता और अपने लोभ लालच की ओर प्रवृत होना है।

नर्क की नींव

ईश्वर के श्लोकों (वाक्यों) को न मानना। और ईश्वरीय प्रेरणा के धर्म पर झगड़ना। उससे विमुख होना। और उसके आगे घमंड करना है।

सम्पूर्ण विद्याओं का मूल

सर्वशक्तिमान ईश्वर का ज्ञान है। और यह बिना उसके अवतार के ज्ञान के प्राप्त नहीं हो सकता।

सब से महान नीचता

ईश्वर की शरण से निकल कर राक्षसी शरण में प्रवेश करना।

सब से महान अधर्म

ईश्वर के साथ किसी को साझी बनाना। और उसके अतिरिक्त किसी और पर भरोसा करना।

और उसके न्याय से भागने के लिये यत्न करना। जो कुछ हमने तेरे निमित्त बयान किया उन सब का सारांश। न्याय है। न्याय का अर्थ है मनुष्य का भ्रम और अन्ध विश्वास से स्वतन्त्र होना। और ईश्वरीय कारीगरी और अधिकार के अवतारों को एक दृष्टि से देखना। और सम्पूर्ण विषयों का निरीक्षण दृढ़ दृष्टि से करना है।

सब से महान हानि

वह मनुष्य है जिसके जीवन के दिन समाप्त हुये और उसने अपने आपको नहीं पहिचाना।

इसी प्रकार हमने तुझे शिक्षा दी। और तेरे लिए बुद्धि की बातें खोल खोल कर बयान कीं। जिससे कि तू अपने हृदय में ईश्वर पालनहार को धन्यवाद दे। और उसी की दया और उसके प्रदान के लिये सम्पूर्ण संसार में अभिमान करे। इति शुभम्।